आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : मानवतावादी समीक्षक

डो. कल्याण वैष्णव

अध्यक्ष एवं पी. जी. इन्चार्ज

हिन्दी विभाग

एम. एन. कॉलेज, विसनगर.

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने साहित्य सृजन के लिए भारतीय इतिहास एवं भारतीय चेतना के व्यापक फलक को आधार बनाया है। उनकी प्रतिभा सागर की गहराई और आकाश की अनंतता लिये हुए है। साहित्य के माध्यम से उनके विराट रुप का दर्शन होता है। उनका पूरा साहित्य कभी सांस्कृत्तिक दर्शन कराता है तो कभी साहित्यिक चिंतन, कभी भाषा विषयक विचार प्रस्तुत करता है तो कभी मानवतावादी दृष्टि देता है। वस्तुतः छायावाद के बाद जो नये साहित्यकार हिन्दी को मिले उनमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी अपनी व्यापक मानवतावादी समीक्षक की दृष्टि के कारण ही पाठको का विशेष प्रेम, विश्वास और आदर प्राप्त कर सके है।

साहित्य का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है – ''मनुष्य को अर्थात् पशु सुलभ वासनाओंसे उपर उठने के लिए प्रयत्नशील उस प्राणी को – जो त्याग, प्रेम, संयम और श्रध्धा की छीना झपटी, मारा–मारी, लोलुपता और धृणा – द्वैष से बडा मानता है, उस के लक्ष्य की ओर ले जाना ही साहित्य का मुख्य उद्देश्य है ।'' १ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी मनुष्य को ही हमारे अध्ययन की प्रत्यक्ष सामग्री मानते हैं। अतः संकीर्ण स्वार्थो के बंधन से मुक्त होने की प्रेरणा देनेवाले साहित्यको ही महत्व देते हैं। द्विवेदीजी प्रायः संस्कृति के गत्यात्मक आयामों को नवीनता से जोडते हैं और जो विगत हो गया है उस के लिए हार्दिकता का भाव होते हुए भी छोडना जरुरी समझते हैं।

हिन्दी साहित्य के रंगमंच पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीने जिस समय प्रवेश किया उस समय साहित्य के इतिहास और समीक्षा के क्षेत्र में दो विचारधाराओं का आपसी टकराव चल रहा

था । एक ओर नैतिकता के मापदंड से ही साहित्य का मूल्यांकन करनेवाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल थे तो दूसरी ओर छायावादी काव्यधारा के मूलस्त्रोतों से प्रेरित तथा मनोवैज्ञानिक और सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा करनेवाले समीक्षक थे । लोकमंगल की भावना और वैयक्तिक सौंदर्य चेतना के सिध्धातों का संघर्ष चरमसीमा पर था ऐसे समय में द्विवेदीजीने हिन्दी समीक्षा को एक नयी, उदार, वैज्ञानिक और मानवतावादी दृष्टि देकर उन्होंने अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है । द्विवेदीजी दृष्टि में मनुष्य को अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और पराधीनता सें बचाना ही साहित्य का वास्तविक लक्ष्य है – ''इस देश के कोटि – कोटि मनुष्यों को ज्ञान का आलोक देना, उनमें आत्मगौरव का संचार करना, रोग और शोक सें, भूख और प्यास से उनका उध्धार करना ही आज के साहित्यकार का काम है ।'' २ द्विवेदीजी

साहित्य को मानवतावादी दृष्टि से सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रखकर परखनेवाले सहज एवं उदार समीक्षक है । डॉ. रामप्रसाद मिश्रने आलोचना की कुछ नई दिशाएं में लिखा है – हिन्दी आलोचना के इतिहास में मिश्र बंधु आरंभिक विकास के प्रतीक है, शुक्लजी मौलिकता और गंभीरता के वाहक है, नंद दुलारे आधुनिकता के अग्र दूत है तो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी मानवता के संपादक हैं । ३

द्विवेदीजीने हिन्दी आलोचना को जिस विद्वतापूर्ण किन्तु सहज, वैज्ञानिक तथा तटस्थ परंतु सोद्देश्य मार्ग की ओर अंगुलि–निर्देश किया है जो सर्वथा नया होते हुये भी कठिन है, उस पर चलने के लिए पांडित्य और शक्ति की आवश्यकता है मानवतावादी होने के नातें वे लोकभाषा को ही वास्तविक और सच्ची भाषा मानते है, कारण यह है कि – ''उसकी शैली सहज और आडंबर रहित होती है । उसमें घुमाव – फिराव और जटिलता के लिए कोई जगह नही होती ।'' ४

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीने साहित्य की व्याख्या दो भूमियों पर की है – एक आनंदपरक और दूसरी कोरे नैतिक उपदेशो की भूमि है । द्विवेदीजीने आत्मानंदी सुरदास की प्रशंसा ही है और कबीर को भी प्रशंसा का पात्र बताया है किन्तु दोनो की आत्माभिव्यक्तिमें काफी अंतर है । सूरदास में आनंद प्रमुख है तो कबीर में नीति और उपदेश । आचार्य रामचंद्र शुक्लने कबीर की प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए भी कबीर के साहित्य को धार्मिक और सांप्रदायिक साहित्य कहकर खारिज ही

किया है वहां द्विवेदीजीने कबीर संबंधी शुक्लजी की समस्त धारणाओं का विरोध करते हुए कबीर को हिन्दी समीक्षा में चर्चा की मुख्य धारा में ला खडा कर दिया । कबीर के बारे में उन का यह कथन है कि –''कबीर अपने समय में अस्वीकारका बहुत बडा साहस लेकर सामने आये थे, आगे के समय में महत्वपूर्ण माना गया ।'' ५ द्विवेदीजी की जीवन दृष्टि उनके समीक्षा साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में सर्वत्र अभिव्यक्त हुई है । वे साहित्य को सामान्य जनता से अलग वस्तु नही मानते मनुष्य के जीवन को केन्द्र में प्रतिष्ठित करके ही उन्होनें समुचे साहित्य को देखने का प्रयत्न किया है ।

साहित्य के विविध वादों पर भी द्विवेदीजीने अपने मानवतावादी दृष्टि से ही विचार किया है । उनके विचार से आदर्श की ओर झुकाव ही मनुष्य की अपनी विशेषता है । मनुष्य स्वभाव उर्ध्वगामी होता है, मनुष्यने अपनी तपस्या के बल पर ही पशुत्व पर विजय पायी है, यही उसका आदर्श है । इसी प्रकार द्विवेदीजी छायावाद के पक्षधर हैं क्योकि उनमें मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता है । द्विवेदीजी प्रगतिवाद को मानवतावाद का विशेषरुप मानते हैं क्योकि वह मानव मात्र को शोषण से मुक्त करने का लक्ष्य रखता है । द्विवेदीजी मनुष्य की अखंड शक्ति में विश्वास करनेवाले चिंतक है इसलिये वे स्वभावतह आधुनिक मनोवैज्ञानिक निष्कर्षो का विरोध करते है उनके विचार से साहित्य तो मनुष्य को मनुष्य बनाता है, उसमें संयम और निष्ठा, धैर्य और द्रढता का समावेश करता है न कि आदिम मनोवृत्तियों को जगाना और उत्तेजित करना । डॉ. देवराजने उनके बारेमें बहुत ठीक बात कही है कि द्विवेदीजी मुख्यत: एक पंडित है, एक महापंडित या स्कोलर, जिनका प्रभुत्व क्षेत्र सांस्कुतिक इतिहास है । साथ ही उनके व्यक्तित्व में मानवतावादी जीवन दृष्टि का आवेगात्मक आकलन मी है । यदि द्विवेदीजी इस दृष्टि को समग्रता में आत्मसात न कर चुके होते तो वे ऐसे सशक्त उद्‌गार न प्रकट कर पाते जैसे उन्होनें जगह जगह किये है ।

मनुष्य की जीवन शक्ति बडी निर्मम है । वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोह को रौदती चली या रही है । शुध्ध हैं केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा । वह गंगा की अबाधित (अविरत) धाराके समान सब कुछ को हज्म करने के बाद भी पवित्र है । द्विवेदीजी का दृष्टिकोण मुख्यत: मानवतावादी होने के कारण वे स्पष्ट शब्दों में घोषणा करते हैं कि – ''मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि साहित्य से उत्कर्ष या अपकर्ष के लिए निर्णय की एक मात्र कसौटी यही हो सकती है कि वह मनुष्य का हित साधन करता है या नहीं । ६

द्विवेदीजी समाजवादी दर्शन को न तो जडवादी या भौतिक मानते है, न उसे भारतीयता के अनुपयुक्त या प्रतिकूल । द्विवेदीजी में इतनी विचार शक्ति है कि वे समाजवादी भौतिकता की परमार्थिकता समझ सके । साहित्य को महान बनाने के मूल में साहित्यकार का महान संकल्प होता है । जो लोग अपने को समाज से स्वतंत्र समझते हैं उनके लिए द्विवेदीजीने **कला का प्रयोजन** निबंध में लिखा है कि ऐसा सोचना गलत है । व्यक्ति के सारे कृत्यो को समाज के संदर्भ में ही देखा जा सकता है । यदि व्यक्ति ईमानदार है, सत्यवादी है तो उसकी परीक्षा समाज में ही हो सकती है । अनामदास का पोथा उपन्यास में द्विवेदीजीने इस बात को स्पष्ट किया है । द्विवेदीजीने जिन्दगी और मोत के दस्तावेज में स्पष्ट रूपसे कहा है कि मृत्यु अनिवार्य है । शिशिर के फूल के माध्यम से यह कहने का प्रयत्न किया है कि जो फलेगा वह निश्चित रूपसे झडेगा ही । फिर भी न जाने क्यों हम इस अपरिचित सत्य को भूल जाते है । ८

द्विवेदीजी की आस्था महाभारत, कालिदास और मध्यकालीन संतो पर अधिक रही है क्योंकि महाभारत का प्रत्येक पात्र तूफान के भीतरसे गुजरता है । कालिदास में तपस्या है, तपस्या की आंचमें तपकर ही मनुष्य सफल होता है । द्विवेदीजी मानव कल्याण को ही परम मानते हैं । उनके सारे चिंतनमें मानवकल्याण प्रमुखतासें उभरा है । उनका कहना है कि मनुष्य के सामने दो विकल्प है वह देवता भी बन सकता है तो दैत्य भी । पर आज मानव को देवता या दैत्य बननेकी आवश्यकता नही है, पर मनुष्य से मनुष्य बननेकी है ।

द्विवेदीजी की मानवतावादी समीक्षा के अंतर्गत काव्यकी लोक सामान्य भूमिका विस्तार से विवेचन हुआ हे । काव्यानुभूति की अवस्था का विश्लेषण करते हुए उन्होंने बताया है कि – ''कवि का सुख-दु:ख जब कल्पना की सहायतासे छंद, अंलकार आदि के संयोग से तथा अखिल विश्वकी मर्म व्यथाकी चिंता करके सर्वसाधारण के ग्रहण योग्य बन जाता है, तब उसे सहानुभूति की अवस्था कहते है । कविता में कवि अपने सीमित सुख-दु:ख को असीम जगतमें अनुभव करता है । अनुभूति की अवस्था में इसके पैर इस दुनिया पर ही जमें रहेते हैं । वह इसे छोड नही सकता । ७ द्विवेदीजी हिन्दी की अनेक काव्यधाराआके उद्गम के संबंधमें प्रचलित विभिन्न भ्रांतियों का निराकरण लाने में

तथा उनके उद्‌भव की नई व्याख्या करने में सफल हो सके हैं। विशेषत: आदिकाल और भक्तिकाल की काव्यधाराओंके विकास पर उन्होने बहुत कुछ नये ढंगसे विचार किया है।

आदिकालीन एवं भक्तिकालीन साहित्यके संबंध में पूर्ववर्ती विव्दानोंकी धारणाओं से विपरीत अपनी बात रखते हुए अपभ्रंश एंव लोकभाषा के संदर्भ में स्पष्ट किया कि मुसलमानो के आगमनके पूर्व भी हिन्दू राजाओंके दरबारमें उन्हें सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त था। अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने राजशेखर एवं भोजके ग्रंथो का उद्धरण प्रस्तुत किये है। संत कवियोकी भाषा, छंद, अलंकार, खंडन-मंडन की पध्धति इन सभी के आधार पर उन्होने यह स्पष्ट कर दिया कि हिन्दी का संत काव्य सिध्धो और नाथपंथियों के साहित्यका सहज विकसित रूप है, इसे इस्लामसे प्रेरित माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रगीत-मुक्तकों के संबंध में उनका मत है कि उनमें कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियों प्रमुख होती है। परंतु उनसे हमारे हृदयमें आनंद का संचार इसलिए होता है कि वे हमारी अनुभूतियोंको जागृत करती है। कवि की अनुभूति पाठक के भीतर वासना रूपमें स्थित भावोंको उद्‌बुध्ध करके ही रस संचार
करती है।

द्विवेदीजीने कृष्ण विषयक विदेशी विद्वानोंकी मान्यता का खंडन किया है। कुछ विदेशी विद्वान बेचर, ग्रियर्सन, केनेडी जैसे लोंगों का मानना था कि कृष्ण ईसामसीहा क्राईस्ट का भारतीय रूप है। द्विवेदीजीने अपने गहन अध्ययन पर आधारित अनेक तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए यह कहा कि कृष्ण का वर्तमान रूप नाना वैदिक-अवैदिक आर्य-अनार्य धाराओंका मिश्रण है। इसी प्रकार स्त्री - पूजा और उसका वैष्णव पंथ में आचार्य द्विवेदीजीने तंत्र - मंत्र वाद के उद्‌भव का कारण आर्दश भ्रष्ट बौध्ध संग से मानकर संसार के सभी धर्मो में व्याप्त तंत्रवाद का स्वीकार किया हैं।

मानवकल्याण की मूल भावना को लेकर द्विवेदीजीने बाणभट्टकी आत्मकथा उपन्यास की रचना की है। जिसमें उनका मानवतावादी स्वर पूरी तरह उभरा है। बाबा और बाणके वार्तालापमें मानवतावादके विविध पहलू पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने सिध्ध कर दिया है कि वे मानवतावादके अनन्य उपासक है। बाण के अतिरिक्त भट्टिनी, निपुणिका, महामाया आदि पात्र भी इस विशाल मानवताके आर्दशको व्यवहारमें परिणत करने के लिए प्रयत्नशील है। भट्टिनीका चिंतन भी

मानवतावादका स्थापक है जिसके माध्यमसे उपन्यासकारने जाति-पातिके बंधन तथा उंचनीच के भेद को समाप्त करना चाहा है। वह मानवचित्त को कोमल और संवेदनशील बनाना चाहता है। इस प्रकार मानवता के अंदर आस्था रखनेवाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी समसामियक परिस्थितियों में ही मानवधर्म की कल्पना करते हुए दिखते हैं, छिन्न-भिन्न समाज अपना अस्तित्व बनानेमें ही असमर्थ रहता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी भारतीय संस्कृति एवं इतिहासके पुजारी हैं। उनका साहित्य इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है। गंभीर से गंभीर विषय पर भी लेखनी उठाने पर उनका पांडित्य पाठक के समक्ष सरस और मनोहर रूप धारण कर व्यंग-विनोद के साथ प्रस्तुत होता है। उनकी भाषामें सर्वत्र उनका व्यक्तित्व झांकता है। यदि एक ओर उनकी भाषा में संस्कृति वैभव है तो दूसरी ओर जनसाधारणोपयोगी सरलता और सुबोधता विद्यमान हैं। वे किसी भी कृति की आलोचना उसके ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भमें करने के पक्षधर है। काव्य - भाषा के संदर्भ में द्विवेदीजी यह चेतावनी भी देते है कि - ''जो भाषा मनुष्यकी उसकी सामाजिक दुर्गति, दरिद्रता, अंध-संस्कार और परमुखापेक्षिता से नहीं बचा सकती वह किसी काम की नहीं है, भलें ही उसका संबंध जनसाधारणसे हो।'' ९ इसी

संबंधमें द्विवेदीजी एक और महत्त्वपूर्ण बात करते हैं- ''भाषा अनायास लब्ध वस्तु नहीं है, उसके लिए साधना और तपस्या की आवश्यकता है। साधना, त्याग और बलिदान के द्वारा सीखी हुई भाषा भी सहज भाषा है।'' १०

हिन्दी के प्रगतिशील आंदोलनो को द्विवेदीजीने अत्यंत सहानुभूतिके साथ देखा हैं। मानवतावादी और प्रगतिशील दृष्टि के कारण ही द्विवेदीजी प्रेमचंद - साहित्यकी महानता समझ सके हैं। द्विवेदीजीने मानवता के इतिहास और उसकी विकास यात्रा को ही मनुष्यकी जय यात्रा कहा है, जिसका स्मरण करते ही उनकी रक्त-शिराए झनझनाने लगती है।

निष्कर्ष रूपसे यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीजी का चिंतन चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो, उसके मूलमें मानव-मात्र का कल्याण ही है। वे व्यक्ति मानव के स्थान पर समष्टि मानव को अधिक

महत्ता प्रदान करते हैं। द्विवेदीजी का मानना है कि चाहे साहित्य हो या विज्ञान, धर्म हो या दर्शन, इहलोक हो या परलोक मानवका कहीं भी और जैसे भी हितचिंतन हो वही श्रेष्ठ है। इसी धारणाको सदैव स्वीकार करते हुए द्विवेदीजीने सर्वत्र मानवतावादी दृष्टि से ही साहित्यकी परख की है। वर्गवादमें उलझी हुई और कहीं- पर वैज्ञानिक अनुसंधानो के अंधानुसरण में लगी हुई और कहीं-कहीं वैयक्तिक आरोप-प्रत्यारोपों से ग्रस्त हिन्दी - समीक्षाको द्विवेदीजीने एक अत्यंत उदार, नैतिक पटभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। वास्तवमें वे मूल्यवादी समीक्षक रहे हैं। एक आलोक शिखर के रूपमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीने संकट की घडी में हिन्दी भाषा और साहित्य का नेतृत्व किया हैं। इसलिए वे प्राचीन के पंडित है, नवीन के व्याख्याता है, बुध्धि के धनी हैं, सहृदयताके पुंज हैं, सामाजिक शक्ति के आकांक्षी हैं सौंदर्य के उपासक है।

(१) कल्पलता : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १९८
(२) अशोक के फूल : वही पृष्ठ १८५
(३) आलोचना की कुछ नई दिशाऐ - डॉ. रामप्रसाद मिश्र पृष्ठ १४५
(४) हिन्दी की भूमिका और कबीर : आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १५१
(५) हिन्दी साहित्य की भूमिका और कबीर : वही पृष्ठ१२३
(६) हिन्दी साहित्य : वही पृष्ठ १९५
(७) हिन्दी साहित्य : वही पृष्ठ ४५७
(८) हिन्दी साहित्य : वही पृष्ठ ४५१
(९) विचार और वितर्क - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : पृष्ठ १९५
(१०) वही : पृष्ठ १९५